अभिज्ञानशाकुन्तलम् में मानवीय संवेदना

प्रा. डॉ. सुरवीर सिंह आई. ठाकुर
संस्कृत विभागाद्यक्ष,
आर्ट्स एंड कॉमर्स कॉलेज, ओलपाड, जिला- सूरत

अभिज्ञान शाकुंतल नाटक ने कवि कालिदास को महाकवि कालिदास बनाया और कवि कुलगुरु के स्थान पर बिराजमान किया । यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है । कहा गया है कि – "जर्मन कवि म्युइथ गेटे) ने इस नाटक को पढ़ा और उसका अपने सिर पर लेकर नाचा था । साहित्य के क्षेत्र में उच्च शिरोधार्य स्थान प्राप्त यह उत्तम नाट्य कृति है । मानव मन की ऊर्मिओं मनोभावों) से छलकता नाटक मानवी के हृदय का नाटक है । पितृप्रेम, पशु-पक्षी प्रेम, प्रियतम प्रेम और विरह की व्यथा का आलेखन, इस नाटक की रचना, घटना, प्राकृतिक सौन्दर्य का वरण, कई चिरस्मरणीय क्षण का जीवंत आलेखन, उसी क्षण में धडकते मानव हृदय की मुग्धता, विरल मिलन, वेदना आदि मानव भावों की सूक्ष्मता, कवि की कल्पना, यह काव्य साहित्य जगत का अद्‌भुत उपहार बन रहा है ।

"काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला ।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्ट्यम् ॥"

'शाकुन्तल' नाटक ने विश्व साहित्य की कई श्रेष्ठ साहित्य कृतियों में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया है । यह कारण है कि कवि की भावनाओं, भावजगत संपूर्णत: शब्दों के माध्यम से विकसित हुआ है । कवि ने वनस्पति, पशु, मानव तथा प्रकृति के भावों का जो कलात्मक ढंग से आलेखन किया है, वह सौन्दर्य निरूपण, संसार दर्शन और कवि के शब्द वैभव तथा कल्पना वैभव मानव हृदय को प्रफूल्लित करके प्रसन्नता का सजीव वातावरण हृदय में उत्पन्न करता है ।

मूल स्त्रोत

कवि कुलगुरु कालिदास का विश्वविख्यात रूपक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' इतिवृत्त का मूल स्त्रोत महाभारत के आदिपर्व के 'शकुन्तलोपाख्यान' अध्याय : ६२ से ६९) में शामिल है ।

महाभारत का दुष्यंत विषैला तथा विलाषी प्रकृति का व्यक्ति है । जो भली-भोली ऋषि कन्या शकुन्तला को अपनी वासना की तृप्ति के लिए अपनी जाल में फँसाकर ऋषि के आगमन के पूर्व, वहाँ से तपोधणी कण्व के शोप के डर से भाग जाता है । ऋषि तो नजदीक ही पुरुषार्थ हेतु गये थे । दुष्यंत राजधानी हस्तिनापूर आकर शकुन्तला को विस्मृत कर देता है । इसके बाद शुकन्तला अपने छ: वर्ष के पुत्र सर्पदमन के साथ दुष्यंत की सभा में उपस्थित होती है । परंतु दुष्यंत शकुन्तला को अस्वीकार करता है । ताकि अपमान सहन न करने के कारण महाभारत की शकुन्तला अपशब्दों का सहारा भी लेती है ।

Vol. 9, Issue: 8, August: 2021
ISSN:(P) 2347-5404 ISSN:(O)2320 771X

दुष्यंत को तिरस्कृत भी करती है । अंत में आकाशवाणी के आदेश के कारण दुष्यंत को शकुन्तला और पुत्र सर्वदमन को स्वीकार करने के लिए मजबूर होना पड़ा । दुष्यंत के मन में शकुन्तला के लिए कोई न्याय की भावना नहीं है । दुष्यंत शकुंतला को न पहेचान ने का ढोंग भी करता है । इस प्रकार का आचरण महाभारत में चित्रित दुष्यंत का वर्तन अधम है। दुष्यंत के निदंनीय चरित्र के कारण न तो वह हमारी सहानुभूति का पात्र बनता है न तो प्रशंसा का अधिकारी !

कवि मूर्धन्य कालिदास ने सृष्टि में आनंदित परम तत्त्व का शाश्वत, सत्य, शिव और सुंदरता के रूप में साक्षात्कार किया है । जीवन की समग्र भूमिका को रखकर उसके ब्रह्मांड के दर्शन करनेवाले यह कवि धार्मिक रहस्यों के द्दष्टा है । जीवन में दिखाई देनेवाले विरोधी धर्म और विरोधाभास की महिमा करके उसके समन्वय में जैसे कि निष्पन्न होते परिणाम में ही उन्होंने पूर्णता के दर्शन किये हैं । महाकवि कालिदास के बारे में उमाशंकर जोषी ने कहा है कि – “कालिदास में काव्य रचना की पर्णता द्दष्टिगोचर होती है । फिर भी इनमें जो कोई विशेष गुण प्राप्त हो, तो वह है – जीवन के ब्रह्मांड का दर्शन करने की उच्च शक्ति ।”

कवि की यह शक्ति द्दष्टि वह एक ऋषि के आध्यात्मिक दर्शन है । जिसको ईश्वरीय चेतना का संस्पर्श हुआ है ।

महाकवि कालिदास के बारे में सर्वेक्षण ‘अभिज्ञान शाकुन्तलम्’ नाटक में सर्वार्थ सिद्ध को प्राप्त हुआ है । इस नाटक में राग और त्याग का गौरव हुआ है । अंत में इस दोनों ध्रुवों के समन्वय को ही परम तत्त्व कहा गया है । वही परम आनंद स्वरूप में है ।

हेन्री वेल्स लिखते हैं कि – “शाकुन्तल का कार्य रोमेन्टिक नाटक नहीं, परंतु एक धर्ममूलक पवित्र नाटक है ।”

अभिज्ञानशाकुन्तलम् साहित्यक द्दष्टि से एक अद्वितीय कलाकृति है, किन्तु उसका सूक्ष्म अध्ययन करने से वह एक कान्तदृष्टा ऋषि के अनुपम दर्शन होने के कारण आंतरिक प्रतीति जगाती है । इसमें मानुषी भावों को दिव्यता में रूपांतरित किया गया है ।

कालिदास के तीनों नाटकों में नांदी श्लोक में शिव की ही स्तुति की गई है । कालिदास शिव का महान देव मानते हैं । शिव, सत्य, शिवम् और सुन्दरम् अधिष्ठता देव है । शिव ही सृष्टि के पूरे ब्रह्मांड़ में अंदर बहार सर्वत्र विद्यमान है । तमस से पर परम ज्योति स्वरूप शिव ने आठ ऋषिओं के द्वारा प्रत्यक्ष अनुभूति कर सके ऐसे परमेश्वर के स्थान पर शकुन्तला को नन्दी में अभिव्यक्त है ।

‘या सृष्टि सष्टुराधा’

“स्रष्टानी सृष्टि आद्या विधिरुत हवि जे व्हेती पोते ज होगी
जे बंने काल पोजे, स्रृतिविषयगुणा व्यापी ने विश्व भी ।

सौ बीजोनी कही प्रकृति, वली घरे जेथी सौ प्राण–तेह
अष्ट प्रत्यक्षमूर्ति थकी विदित थता इश रक्षो तमोने ।"

जल, अग्नि, सूर्य, चंद्र, आकाश, पृथ्वी, होतक यजमान) और वायु – ये आठ विभूतियों से ईश्वर शिव) प्रत्यक्ष हुए है । ये आठ तत्त्वों के संघात में से सृष्टि का आविर्भाव अवतार) हुआ है । प्रलय के समय ये तत्त्व इश्वर में ही समाहित होते हैं ।

शाकुन्तल की भूमिका के समापन में कालिदास ने व्यंजनापूर्ण कथा प्रवेश किया है ।

"तवास्मि, गीतरागेण हरिण प्रसभं हतः ।
एष राजेव दुषयन्तः सारङ्गोणतिरंहसा ॥" १–५)
"खेंचायो वेगथी तारा गीतरागो, मनोहर
जेम दुष्यंत राजा आ अतिवेगी कुरंगथी । २–५)
– उमाशंकर जोषी

अर्थात् – जैसे अति द्रूत गति हिरन के वेग से यह राजा दुष्यंत आकर्षित हो गया, उसी तरह तुम्हारे मनोहर गीत के राग से मैं अति आकर्षित हो गया ।

यहाँ पर हिरन कामना या राग का प्रतीक है । तपोवन में पली भोली, सुंदर तथा योवन के कारण मन हरनेवाली ऐसी शकुन्तला का भी व्यंजक बना है । यहाँ प्रयुक्त – 'प्रसंभं हतः सारङ्गेपातिरंहसा' शब्द अत्यंत महत्त्व के हैं । प्रबल कामना इस वेग से दुष्यंत शंकुतला की ओर आकर्षित होता है । विषयी मन को वह संयम नहीं कर सकता । आरंभ में असंयमी, विषयी, रागी और मिथ्यावादी लगते युवा राजवी की अंतः चेतना में संचित संस्कारों को धीरे धीरे जाग्रत करके कवि उसको आध्यात्मिकता के प्रति ले गया है । नाटक के प्रारंभ में दुष्यंत और शकुन्तला को मानव सहज वृत्तियाँ प्रबल और वेगवंत हो, ऐसे वातावरण में रखे हैं और क्रमशः राग से वैराग्य की ओर खींचे जाते हैं । कवि कालिदास का उद्देश्य मानव चेतना का भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर निर्देश करना है ।

दुष्यंत के रथ के मार्ग में आये तपस्वी विवेक का प्रतिनिधित्व करते हैं । तपस्विओं को देखते ही दुष्यंत की चेतना में विद्यमान विवेक जाग उठता है और वह संयमित होकर रथ को रोक देता है । किन्तु विषयावृत्ति चित्त के दुष्यंत के मन में विवेक स्थिर नहीं होताा। 'तुं चक्रवर्ती पुत्रने पामजे' ऐसा ऋषिओं को दिया वरदान उसके संचित संस्कारों का परिणाम है । दुष्यंत विशुद्ध कर्मनिष्ठ राजर्षि है । उसके व्यक्तित्व में जो विचार ज्ञात होते हैं वे अतिथि है । वे भी कर्मनिष्ठ के रूप में ही आये हैं तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में से जन्म लिया है । स्वाभाविक नहीं है ।

आश्रम में प्रवेश करता हुआ दुष्यंत विनय भंग नहीं करता । वह सूत को कहता है कि – 'विनीतवेषण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम' । तपोवन में तो नम्रता से प्रवेश करना योग्य है । यहाँ हमे ज्ञात हो सकते हैं कि दुष्यंत में राजाचित्त संयम और विवेक है ।

शकुन्तला प्रखर तपस्वी विश्वामित्र और सौन्दर्य में मूर्धन्य मेनका की संतान है । तप और सुंदरता का स्वाभाविक समन्वय इनमें है । संयमित सौंदर्य की वह प्रतिमूर्ति है । दुष्यंत के रागवृत्ति को उत्तेजित कर सके ऐसा रागपूर्ण उसका सौंदर्य है । उसके प्रथम दर्शन में ही दुष्यंत अनुभव करता है ।

"शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदी जनस्य ।
दूरीकृता:खलु गुणैरूद्यानलता वनलताभि: ॥" १-१७)
"अत: पुरेच दुर्लभ, आ वयु आश्रम निवासी जननुं जो,
पाछल पाडी ज ग्रुणथी उद्यालनता वनलताओ ।"

आश्रम में रहते हुए लोगों का सौन्दर्य अंत:पुर में भी न मिल सके ऐसा हो, तो सही गुणों में वनलतायें उद्यान की लताओं को भा गई ।) दुष्यंत देखता है कि, यौवन से अभिनव लगते शकुन्तला के शरीर को वत्कल भी कैसा शृंगार रूप निखरा है ।

"इयमधिकमनोरच वल्कलेनापि तन्वी ।
किम इव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥" १-१९)
"अधिक मन गमे आ वल्कलेय कृशांगी ।
शुं नहीं मधुरमूर्ति ने अलंकार रूप ?" १-१९)

नगरजीवन के भौतिक सुखों से अभ्यस्त होने के कारण दुष्यंत में भोगाकांक्षा कामवासना) सहज है । दिपरहीत तपोवन में संयमित जीवन से अभ्यस्त शकुंतला युवती सहज भावों को अनुभूति करती है । फिर भी विवेक को संभाल सकती है । वह संसारी भाव जगत से अज्ञात होते हुए भी मानव सहज भावों से अस्पृष्ट न रह सकी । दुश्यंत को देखते ही वह अनुभव करती है कि - "आने जोडने हुं तपोवन विरोधी विकार वाणी के बनी ?"

शकुंतला संयम जिसका धन है ऐसे तपोधन के सान्निध्य में और तपोवन के संयमित पवित्र वातावरण में पालन-पोषण हुआ था, ताकि इन्द्रियों की प्रकृति को सूक्ष्मता से देखाहै ।

"ज्यां सुधी राग त्यागमां अने वैयक्तिक कामना समष्टिना सुखमां भळी न जाय त्यां सुधी प्रेममां पूर्णता न आवे."

शकुंतला के स्वभाव की सीमा है - नरी वैयक्तिता । दुष्यंत को मिलने के बाद दुष्यंत ही इसका इष्ट है। जिस कण्वे ने उसका पालन पोषण किया, जिसने उसके प्रतिकूल दैव के शमन के लिए सोमतीर्थ तक पहूँचे, उस पिता की शादी के लिए अनुमति की परवाह न की । स्वसुख को केन्द्र में रखकर उन्होंने गांधर्वविवाह को माना । शायद जीवन में पहली बार अपनी इच्छानुसार यह महत्त्व का निर्णय शकुंतला ने लिया था और वह भी तुरन्त जिसका परिचय तनिक समय में हुआ ऐसे अतिथि दुष्यंत के भरोसे । शकुंतला के इस निर्णय में दूरदर्शिता और धीरज का अभाव है ।

दुष्यंत बहुपत्नीत्व व्यक्तित्व के धनी थे । कालिदास के समय में राजाओं के यह स्वाभाविक विशेषता मानी जाती थी, किन्तु दुष्यंत और शकुंतला का प्रणय सम्बन्ध ऐसा स्थूल या भौतिक नहीं । शकुंतला

अपने सौम्य हृदय से दुष्यंत की जन्मजन्मांतर का सहचर्या रही थी । शकुंतला कुल की प्रतिष्ठा है । वह अपनी सखियों को कहती है कि –

"परिग्रहबहुत्वे पि दे प्रतिष्ठे कुलस्य में ।
समुद्ररशना चोर्वी सखी च युवयोरियम् ॥" ३-१९)
"पत्नी अनेक छे तोय प्रतिष्ठा कुले मम:
समुद्र मेखला पृथ्वी, आ तमारी सखी वली ।"

भले ही मेरी अनेक पत्नियाँ हो, फिर भी सिर्फ दो ही मालाएँ कुल के प्रतिष्ठा के रूप में होगी । समुद्र के समान मेखले की पृथ्वी और आपकी यह सखी ।)

दुष्यंत – शकुंतला का प्रेम गांधर्व विवाह में परिवर्तित हुआ । राग बंधन हुआ, किन्तु गठबंधन प्रेम की मूलभूत परिभाषा में प्राप्त नहीं है । कालिदास का मन प्रेम दिव्य तत्त्व है । प्रेम मुक्ति के मार्ग को प्रज्जवलित करता है । राग, आसक्ति, वैयक्तिकता आदि दूर न हो, वर्ष तक प्रेम में पूर्ति न हो । कालिदास का लक्ष्य है प्रेम में परमतत्त्व का अवतार ।

'दुर्वासानो शाप' इस नाटक की अनिष्ट घटना है, लेकिन इष्ट-अनिष्ट रूप द्वन्द्वों के समुदाय को ही जगत कहा गया है । केवल इष्ट ही परमात्मा रूप है । इष्ट प्राप्ति की इच्छा धारण करनेवाले का प्रयास यह रहता है कि, वठे अनिष्ट का भी समजे और उसका निराकरण कर सके । शकुंतला – दुष्टयंत का अपना सर्वस्व मानकर कर्तव्यों के प्रति अज्ञात बन गयी और दुष्यंत ही उसको भूल गया । दुष्यंत जैसे सत्पात्र के प्रेम का संस्पर्श होने के बाद शकुंतला के प्रेम का परिघ विस्तृत नहीं हुआ । स्वरति में सीमित न हुआ । व्यक्तिगत राग आधार पर प्रेम धर्म विरूद्ध है । वह सत्य के साक्षात्कार के लिए ही 'दुर्वासानो शाप' प्रयोजक हुआ है ।